P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9*(Part-1) December 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

राष्ट्रवाद की अवधारणा और प्रेमचन्द

हबीब खान
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजकीय बाँगड़ महाविद्यालय,
डीडवाना

सारांश

राष्ट्रवाद की अवधारणा आधुनिक युग की प्रवृत्ति है। एक राज्य के लोगों के एक साथ रहने की प्रवृत्ति को राष्ट्रवाद के नाम से जाना जा सकता है। उपनिवेशवाद से मुक्ति ने देश की जनता को अपने आपसी भेदभाव मिटाकर एक साथ रहने की भावना को धारदार किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश पर बाहरी आक्रमण के समय भी यह भावना देखने को मिली। लेकिन जब कोई राष्ट्र इसे किसी नस्ल से जोड़कर देखने लगता है तो कट्टरता उत्पन्न होती है। हिटलर ने राष्ट्रवाद के नाम पर तानाशाही को जन्म दिया। मानवता का क्रूर संहार किया। चीन ने राष्ट्रवाद के नाम पर तिब्बत को हस्तगत किया। बेहतर सुविधा और अवसर की तलाश में व्यक्ति यहाँ से वहाँ भटकते हुए राष्ट्रवाद की अवधारणा को तोड़ता है। इसका स्वरुप एकसा नहीं रहता है। यह राष्ट्रवाद की भावना का ही योगदान है जिसने जमींदारी प्रथा को खत्म कर किसानों में जमीन बाँटनें और बिना भेदभाव के सभी को समान नागरिकता देने का काम किया। लेकिन जब यह धर्म के साथ जुड़ जाती है तो साम्प्रदायिकता को जन्म देती है। नफरत की खेती को बढ़ावा देती है। संवादहीनता और असंवेदनशीलता का रास्ता प्रशस्त करती है। देश को तोड़ने का काम करती है। यह राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल ही है जिसने हिब्रू जैसी मृतप्राय भाषा को जीवन प्रदान किया।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। प्रेमचंद का साहित्य भारतीय जनमानस और भारतीय मरजाद का पूरा लेख है। प्रेमचंद स्वदेशी मंत्र को स्वाधीनता हेतु अस्त्र के रुप में चित्रित करते है। हिंदू–मुस्लिम साझी विरासत को आगे कर एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य करते हैं। प्रेमचंद के साहित्य में सभी धर्मों के पात्रों का संवाद आपसी मेलजोल को सुदृढ़ करता है। प्रेमचंद की सोच में वैमनस्य के लिए किंचित भी स्थान नहीं था। उनकी लेखनी मिज़ान पर कसी अदल की कसौटी थी। बेशक! प्रेमचंद एक सच्चे राष्ट्रभक्त और कालजयी लेखक थे।

मुख्य शब्द : नफरत की खेती, संवादहीनता, मृतप्राय, साझी विरासत, मिज़ान, अदल की कसौटी, युगबोध, जीवन–दर्शन, सांवैधानिक संस्था, जनतांत्रिक राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना

"राष्ट्रीयता के प्रति मेरा प्रेम अथवा मेरी धारणा यह हे कि मेरा देश स्वतंत्र हो ताकि अगर आवश्यकता पड़े तो मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए वह स्वयं को होम कर सके। इस धारणा में प्रजातीय घृणा का कोई स्थान नहीं है।"

–महात्मा गाँधी –

राष्ट्रवाद की पश्चिमी अवधारणाएँ यूरोप के छोटे देशों को ध्यान में रखकर विकसित हुई। भारत जैसे बहुल संस्कृति वाले देश के लिए राष्ट्रीयता को समझना आसान नहीं है। कई मिश्रित संस्कृतियों का संघीकृत राज्य है। अलग–अलग राज्यों का सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आधार पृथक है। राष्ट्रीयता अपने आन्तरिक गुण तथा विशिष्टता के कारण सर्वमान्य धारणा नहीं है। समाज और उसकी बदलती प्रवृत्ति–प्रकृति के अनुसार अवधारणा बदलती रहती है। राष्ट्रीयता को परखने की सबसे बड़ी चुनौती दृष्टिकोण और संदर्भ की रहती है। जब इसमें युगबोध जुड़ता है तो जटिलता बढ़ती है। दृष्टिकोण, संदर्भ और युगबोध ही वह औजार है जिनके आधार पर राष्ट्रीयता को प्रस्तावित किया जाता है। भारतीय राष्ट्रवाद जैसे–जैसे विकसित हुआ है, हिन्दू–मुस्लिम द्वेष बढ़ा है। उपनिवेशवाद से प्राप्त विरासती मतभेद बाहरी शत्रु की भूमिका के बावजूद देश को कमजोर करने को काफ़ी है। धर्म के आधार पर देश का बँटवारा हो जाने पर भी साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयतावाद और भाषा समस्या वर्तमान में

टूट–फूट के बीज है जो राजनेताओं के लिए स्वार्थ सिद्धि के साधन बन गए है। जब धर्म राजनीति में प्रवेश करता है तो साम्प्रदायिकता का प्रसार होता है। जब राजनीति क्षेत्रवाद के साथ जुड़ती है तो अलगाव पैदा करती है। जब राजनीति भाषा के साथ जुड़ती है तो राष्ट्रीय एकता को खतरा पैदा करती है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोधपत्र का उद्देश्य राष्ट्रवाद की अवधारणा और स्वरूप के प्रति सही समझ पैदा करना है। राष्ट्रवाद की साझी विरासत के सिपाही की भावना से अवगत कराते हुए विकृत राष्ट्रवाद के प्रति जन प्रतिरोध पैदा करना है। इस शोधपत्र को निम्न शीर्षकों में बाँटकर समझने का विनम्र प्रयास हैः–

1. राष्ट्रवाद का अर्थ
2. राष्ट्रवाद की अवधारणा
3. राष्ट्रवाद का उदय एवं विकास
4. राष्ट्रवाद का स्वरुप
5. राष्ट्रवाद– विमर्श
6. प्रेमचंद के विचार

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में विवरणात्मक शोध प्रविधि के माध्यम से अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है। अगर हमें किसी के बारें में जानना है तो उसकी अवधारणा, स्वरूप को समझना आवश्यक है। इसी को आधार मानकर विमर्श और विचारात्मक प्रविधि को अपनाया गया है।

राष्ट्रवाद का अर्थ

"राष्ट्रवाद एक शक्ति है जो समाज या जाति को राज्य के अन्तर्गत एक निश्चित तौल में निरकुंश शक्तियों के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा के लिए तथा बाह्य आक्रमण के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक साथ रहने को बाध्य करती है।"

– 'टायनबी'

राष्ट्रवाद शब्द नेशनलिज्म का हिन्दी रुपान्तरण है। यूनान के नगर–राज्यों में इनके बीज प्राप्त होते हैं। राष्ट्रीय भावना की सहायता से एक जन समूह संघरित होता है। जिमरन ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रीयता और सरकार' में लिखा है, 'मेरी दृष्टि में राष्ट्रीयता का प्रष्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास और सामूहिक आत्म–सम्मान से सम्बद्ध है।'[1] यूरोप की व्यावसायिक क्रांति का भारतीय राष्ट्रीय भावना के विकास में पर्याप्त योगदान है। लगभग 1500 ई. के अनन्तर विश्व के अनेक देशों के साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना प्रमुख रुप से प्राप्त होती है। इटली में मैकियावली, फ्रांस में मॉंटेस्क्यू, स्पेन में सर्वेण्टिस, इग्लैण्ड में स्पेन्सर, सेक्सपीयर, बेकन, मिल्टन, जर्मनी में फ्लेमिंग आदि लेखकों ने राष्ट्रीय साहित्य का सर्जन किया। प्रेमचंद का साहित्य भारतीयता और राष्ट्रीयता को समझने का प्रमुख स्त्रोत है। अर्नेस्ट रैनान ने लिखा है, 'व्यक्तियों की एक साथ मिलकर रहने की अदम्य इच्छा ही राष्ट्रीयता की जननी है।'[2] राष्ट्रीयता की विशेषता बताते हुए दर्शन–कोश में कहा गया है कि राष्ट्र की विशेषता सर्वप्रथम जीवन की एक समान भौतिक अवस्थाएँ हैं एक ही भू क्षेत्र, एकसा आर्थिक जीवन, एक भाषा और जातीय स्वभाव के कतिपय गुण, जो उसकी संस्कृति की राष्ट्रीय विशेषता में प्रकट होते हैं।" रवीन्द्रनाथ टैगोर राष्ट्रीयता और देशभक्ति में कोई विभेद नहीं करते हैं। राष्ट्रवाद को परिभाशित करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते है,' लोगों के राजनीतिक और आर्थिक संघ के अर्थ में, राष्ट्रवाद एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसको सारे देशवासी किसी यांत्रिक उद्देश्य से संगठित होकर अपनाते हैं। समाज का अपना कोई बाहरी प्रयोजन नहीं होता।'[3] राष्ट्र को एक समुदाय के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। तमाम असमानताओं और शोषण के बावजूद राष्ट्रवाद को सम–स्तरीय भाईचारे की भावना के साथ जोड़ा जा सकता है। यह वही प्रेरणा है जो दूसरे को मारने और एक फंतासी पर मिटने के लिए उद्वेलित करती है।

राष्ट्रवाद की अवधारणा

'राष्ट्र एक मानसिक प्रवृत्ति है। जब यह प्रवृत्तिप्रबल होती है तो देश के निवासियों में भातृत्व पैदा हो जाता है। प्राचीनकाल का भारत इसी अर्थ में एक था कि उसकी संस्कृति एक थी।'

–प्रेमचंद

राष्ट्रवाद अनुभूति के स्तर पर आपस में जुड़ने का समुदायगत प्रयास है। राष्ट्रवाद की प्रकृति और सीमाओं को स्पष्ट करते हुए जॉन स्टुअर्ट मिल ने लिखा है, 'मानव के जाति का कोई हिस्सा एक राष्ट्र की स्थापना की बात कह सकता है यदि दूसरे लोग उस समान अनुभूति के आधार पर आपस में जुड़ते हैं जिसका उनमें और दूसरों में अस्तित्व ही नहीं होता है। राष्ट्रवाद की यह भावना विभिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकती है। कभी–कभी यह बात नस्ल और वंश की अस्मिता के प्रभाव के कारण होती है। भाषा समुदाय और धर्म समुदाय का इसमें गहरा योगदान होता है। भौगोलिक सीमाएँ भी इन्हीं कारणों में से हैं। लेकिन राजनीतिक पूर्व वृत्तान्त, राष्ट्रीय इतिहास पर कब्जा और गौरवपूर्ण समुदाय की स्मृति, सामहिक अभियान और अपमान, आनन्द और दुःख अतीत में घटी समान घटनाएँ सबसे शक्तिशाली कारण होते हैं।'[4] एक देश की जनता एक जाति है और उस जाति का स्वरुप है वह उसकी जातीयता है। जातीयता ही राष्ट्र है। भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अपने धर्म के साथ अन्य धर्मों के लागों को भी धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की समानता के आदर्श पर चलने की प्रेरणा देता है। राष्ट्रवादी होने का तात्पर्य सर्वधर्म और सर्वजाति समभाव है। राष्ट्रवाद की मूल धारणा है कि वह शक्ति का स्त्रोत बनता हैं। जब समूह की सर्वोपरि निष्ठा, परिवार, जाति, वंष, धर्म आदि से ऊपर उठकर क्षेत्रीय संगठन के प्रति स्थापित हो जाती है साथ ही यह भावना प्रबल हो जाती है कि व्यक्ति अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता सामूहिकता में ही प्राप्त कर सकता है। तब राष्ट्रवाद का जन्म होता है। राष्ट्रवाद बहुत हद तक जनभावनाओं को जागृत करने का आन्दोलन भी होता है। राष्ट्र के लिए मिथक, प्रतीक, मसीहा और इतिहास की आवश्यकता होती है। राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय पर्व और षहीद और सैनिक राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के अंग होते है।

एण्डरसन के विचार में राष्ट्र एक कल्पित समुदाय है जिसे प्रिंट मीडिया ने संभव बनाया है। डॉ.

रामविलास शर्मा का कहना है कि यह विचार जातीय इतिहास को छोटा करता है। एण्डरसन राष्ट्र को ऐतिहासिक संगठन के रूप में न देखकर धर्म और भाषा के आधार पर बंटे समुदायों को राष्ट्र की कल्पना में जरूरी तथ्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह अवधारणा आपत्तिजनक हैं क्योंकि इससे विभिन्न वर्गों के योग से गठित जातीय संस्कृति, पूँजीवादी इतिहास और स्वाधीनता आन्दोलन द्वारा किए प्रयास सब राष्ट्रीय अस्मिता का निर्माण में अनावश्यक हो जाते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा राष्ट्रीयता की अवधारणा भारतीय परम्पराओं में खोजते हैं। पूर्व आधुनिक काल में भी भारतीय अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद के विकास की संभावना मौजूद थी, जिसमें जातियों के उदय के संकेत भी थे। प्रादेशिक भाषाओं का प्रसार और विकास भी हुआ। हिन्दी की बोलियों तथा प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रवाद के संकेतो को खोजा जा सकता है। रामविलास शर्मा मानते हैं कि राष्ट्रवाद राष्ट्र से पहले आता है। (Nationalism comes before nations) वह किसी भौगोलिक क्षेत्र को भावनात्मक, वैचारिक और राजनीतिक स्तर पर संगठित करता है। राष्ट्रवाद के निर्माण में निर्णायक भूमिका आत्मचेतना की होती है। पूर्व आधुनिक कालों में भी सामाजिक सन्तुलन पैदा करने का प्रयास किया गया है जिसका सफल प्रयोग राष्ट्रवादी आन्दोलन में हुआ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है, 'अपने यहाँ जातियों के बीच सन्तुलन का प्रयास किया है। उनके बीच वास्तविक मतभेदों को स्वीकार किया है और किसी समय कुछ एकता का भी प्रयास किया है। ऐसे प्रयास हमारे संतों ने किए है जैसे नानक, कबीर, चैतन्य और दूसरों ने भी सभी जातियों को ईश्वर के एक होने के उपदेश दिए हैं।'[5] (रवीन्द्रनाथ, नेशनलिज्म, ऑक्सफोर्ड प्रकाशन)

राष्ट्रवाद का उदय एंव विकास

राष्ट्रों का इतिहास कोई न कोई गोपनीय नैरंतर्य दर्ज करता है– बोर्खोज

डॉ. ऐनी बिसेंट मानती है कि कन्या कुमारी से कष्मीर तक भारत वर्ष एक राष्ट्र का रूप ग्रहण कर चुका था, जब अनेक राजा एक चक्रवर्ती राजा के अधीन थे। इस प्रकार भारत में राष्ट्रवाद की भावना प्राचीनकाल से विद्यमान है। लेकिन अंग्रेजों के आने से पूर्व न तो जनता में सम्प्रभुता की अवधारणा थी और पूर्व में न राष्ट्रीय राजव्यवस्था थी, जिसके बिना राष्ट्रवाद का अस्तित्व नहीं हो सकता है। निर्मल वर्मा भारतीय राष्ट्रीयता का उदय उपनिवेशवाद की जड़ो में न खोजकर, भारतीय परम्पराओं में खोजते हैं। उनका मानना है, 'भारत में विदेशी दासता से मुक्ति पाने की लालसा महज राजनीतिक उद्देश्यों से उत्प्रेरित नहीं थी, उसके पीछे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को विस्मृति के अंधेरे से बाहर लाने की आकांक्षा भी थी... भारतीय राष्ट्रीय चेतना यदि आरम्भ से आत्मकेन्द्रित, संकीर्णता से युक्त रही तो इसका कारण यह था कि वह ऊपर से बलपूर्वक आरोपित नहीं की गई, उसके संस्कार पूर्व से ही उसकी सांस्कृतिक भावनाओं में मौजूद थे। भारत की विभिन्न बोलियों, भाषाओं में विभिन्नता होने के बावजूद अन्तर्निहित एकसूत्रता के तत्व विद्यमान थे, जिनके कारण वे भारत के एकीकरण के रास्ते में कभी भी बाधा बनकर प्रस्तुत नहीं हुई।'[6]

यह सत्य है कि उपनिवेशवाद से मुक्ति ने धर्म के नाम पर जुड़ने की राह हमवार की थी। गदर दोनों धर्मो की एकता पर टिका था। गदर जैसे राष्ट्रवाद की तरफ बढ़ा तो धर्म की भूमिका कम होने लगी। गदर के असफल हो जाने पर वैचारिक साए में मध्यवर्ग के प्रभावशाली होने के कारण यह धार्मिक अलगाव की प्रक्रिया रूक गई। धर्म राष्ट्र के दो विचारों का वाहक बन गया। यहीं से द्विराष्ट्र सिद्धान्त की नींव पड़ी। हिन्दुओं और मुसलमानों को दो जातियों की अस्मिता के रूप में प्रचारित करना अंग्रेजों की दूरगामी योजना का परिणाम था। अंग्रेजों ने इसी विभेद नीति को ही स्वीकार किया। जॉन स्ट्रेची ने केम्ब्रिज के छात्रों को समझाया कि दुनियाँ में भारत नाम कोई देश नहीं है। वहाँ पंजाबी है, बंगाली है, मुसलमान है, भारत राष्ट्र नहीं हैं। (सुमित सरकार, मार्डन इन्डिया, पृ. 21)

इस प्रकार भारत में 19 वीं सदी के दौरान पश्चिम की प्रेरणा से राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात होता है। उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन के रूप में विकसित होता है जिसका चरित्र सर्व समावेशी रहा है। भारतीय बौद्धिक राष्ट्रवाद दो प्रकार से भारतीयों के सम्मुख आता है, एक सुधारवादी और दूसरा पुनरूत्थानवादी। जहाँ सुधार वादियों ने पाश्चात्य प्रभाव को आत्मसात किया और पाष्चात्य प्रभाव को भारतीय चिन्तन में मिलाकर एक कर दिया। उदारता और स्वतंत्र विचार कटुता और शास्त्रवाद पर विजयी हुए जिससे भारतीय राष्ट्रवाद स्वतः उदय हुआ।

प्रार्थना सभा, आर्यसमाज, ब्रह्म समाज ने समाज सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रसिद्ध विद्वान के दामोदरन ने लिखा है, 'भारत में नवजात राष्ट्रवाद की राजनीतिक और आर्थिक अन्तर्वस्तु ने स्वयं को धार्मिक सुधार के रूप में अभिव्यक्त किया, जिसने प्रतिक्रिया वादी सामाजिक शक्तियों के संरक्षण में प्रचलित पुराने सड़े गले रीति–रिवाजों और धार्मिक अंधविश्वासों को ठुकरा दिया। राजा राम मोहन राय इस आन्दोलन के प्रथम उल्लेखनीय नेता थे।'[7]

पुनरूत्थानवादी भारतीय परम्परा में भारतेन्दु युगीन लेखकों ने हिन्दुओं के प्राचीन गौरव और उनके मध्यकाल के मुसलमानों के द्वारा होने वाले दमन की स्मृतियों के जरिए एक सुसंगत हिन्दू धार्मिक समुदाय के निर्माण का प्रयत्न किया। हिन्दी नवजागरण के लेखकों ने इतिहास के विवरण देकर हिन्दुओं के आन्तरिक भेदभाव को उनकी कमजोरी बताया और एकजुटता से राजनीतिक लक्ष्य को अपनाने पर बल दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी मुख्य रूप से चेतना फैलाने वाले लेखक माने जा सकते है। भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलनों के बाद सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना है। यही कांग्रेस आगे चलकर ब्रिटिष साम्राज्य के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का सषक्त साधन बनी। कुछ वर्षों बाद यह कांग्रेस दो भिन्न विचारधाराओं में

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9*(Part-1) December 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

बंट गई। प्रथम दल उदारवादी बुद्धिजीवियों का था, जो पश्चिम की उदारवादी दर्शन पर राष्ट्रीयता का निर्माण करना चाहते थे। उदारवादी दल की मांगों पर अंग्रेजों ने ध्यान नहीं दिया, फलस्वरूप कांग्रेस के भीतर जीवन दर्शन और विचारधारा के आधार पर नव दल का सृजन हुआ। तिलक, घोश, पाल ने नई राष्ट्रीयता की परिकल्पना की। इनके सिद्धान्त पश्चिम की विचारधारा पर नहीं वरन भारतीय दर्शन और संस्कृति के चिर प्रतिष्ठित मूल्यों पर आधारित थे। तिलक और पाल जैसे नेताओं का मानना था कि हिन्दू बहुल राष्ट्र में हिन्दुत्व की भावना ही राष्ट्रीयता का आधार हो सकती है। अरविन्द नें एक कदम आगे बढ़कर राष्ट्रवाद को सनातन धर्म से समान कर दिया। उन्होंने कहा कि हिन्दू राष्ट्र का जन्म सनातन धर्म के साथ हुआ। सनातन धर्म का अर्थ है राष्ट्रवाद।

भारतीय राष्ट्रीय चिन्तन में महात्मा गाँधी के प्रादुर्भाव से नया अध्याय षुरू होता है। 1920 ई. में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्वोच्च नेता का स्थान ग्रहण किया। गांधीजी ने देश मुक्ति के लिए जिस नवीन तकनीक (अंहिसा, सत्य) का प्रयोग किया। जिससे आकर्षित होकर भारतीय जीवन के सभी पक्षों के लोग राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हो गए जिसका लक्ष्य स्वराज की प्राप्ति था। उनका राष्ट्रवाद धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद था। 1928 में मौलाना आजाद ने मुस्लिम नेशनलिस्ट पार्टी का गठन किया। जिसका उद्देश्य था कि मुस्लिमों के बीच राष्ट्रवाद का विकास हो। साम्प्रदायिकता के विरूद्ध ऐसी मानसिकता विकसित की जा सके जिससे राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति विश्वास का भाव हो। खिलाफत आन्दोलन के लोगों द्वारा जमायतुल उल्मा–ए–हिन्द के एक कार्यक्रम में स्वतंत्र भारत की परिकल्पना धार्मिक समुदायों के संघ के रूप में की गई। यह मुस्लिम राष्ट्र की कल्पना दिशा में उल्लेखनीय कदम था। इसके कुछ समय बाद सावरकर ने हिन्दू राष्ट्र का सिद्धान्त पेश किया। हिन्दुस्तान जिसे वह हिन्दुस्थान कहना पसन्द करते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दुत्व की पूण्यभूमि और पितृभूमि है। यह मुस्लिम, ईसाई और पारसी का भूमि नहीं है।

सावरकर का यह राष्ट्रवाद हिन्दू, हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान का ऐसा सघनीकरण है, जो धार्मिक प्रेरणाओं से आगे संस्कृति का राजनीतिक रूपान्तरण है। जिसे आज सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहा जा रहा है। इस राष्ट्रवाद की जड़ नवजागरण में भले ही हो, मगर इसकी पौध सावरकर के यहाँ विकसित हुई। सावरकर के समय के राष्ट्रवाद विचारकों का मानना था कि भारत में धार्मिक पुनर्जागरण हन्दिू रुढ़ियों को शक्ति प्रदान करने के लिए उभरा था। बाद में यह अभियान भारतीय राष्ट्रवाद की चेतना का अंग बन गया।

राष्ट्रवाद का स्वरूप

विश्व के सभी देशों में राष्ट्रवाद की अवधारणा में जातीयता की समस्या मुख्य रूप से रही है। जब कोई राष्ट्र किसी देश पर कब्जा करता है तो वह अपनी विजय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए राष्ट्र की राष्ट्रीयता, संस्कृति, जातीयता को नष्ट करने का प्रयास करता है और भाषा को विकृत करता है।

जब कोई राष्ट्र अपने को किसी नस्ल से जोड़कर देखता है तो वहाँ कट्टरता कितना दोहरा चरित्र रखती है इसका नक्शा एम. एन. रॉय ने खींचा है, भारतीय राष्ट्रवाद पर आस्था कितनी अविवेकपूर्ण है कि तथाकथित प्रगतिशील विचारधारा के लोग भी, जब कभी वे सामाजिक संस्थाओं की आलोचना करते है तो यहीं से शुरू करते हैं कि वे पश्चिमी सभ्यता के प्रशंसक नहीं है। वे बेमन और शर्मीले सुधारक तोते की तरह पश्चिमी सभ्यता से असहमति की बात दोहराते है. . . स्त्रियों को वही आजादी दी जानी चाहिए जो यूरोप और अमेरिका की स्त्रियों को प्राप्त है लेकिन हमें भारतीय नारी के आदर्शो को त्यागना नहीं चाहिए. . .जाति प्रथा को खत्म करें लेकिन पश्चिम की संकीर्णता से रक्षा करें। पूँजीवाद का बढ़ावा दे मगर पश्चिमी भौतिकवाद से रक्षा करें। धार्मिक अंधविष्वासों से छुटकारा पाये और विकेकपूर्ण दृष्टि अपनाये लेकिन अनुभवगम्य विज्ञान को मानव ज्ञान का स्रोत मंजूर न करें।'[8]

इस देश का मुसलमान अफगास्तिान, इरान और तुर्कीस्तान से नहीं आया है। यहाँ का इसाई इग्लैण्ड जर्मनी से नहीं आया है। सभी इस देश के रहने वाले है वह भी उतना ही पुराना है जितना यहाँ का हिन्दू। सबका खून एक है, पूर्वज एक है। कुछ पीढ़ियों पहले विभिन्न कारणों से लोगों ने अपनी उपासना पद्धति में परिवर्तित कर लिया। उपासना पद्धति के बदलाव से परम्परा नहीं बदलती, संस्कृति नहीं बदलती है। इन्डोनेशिया एक मुस्लिम राष्ट्र है वहाँ के बीस हजार के नोट पर गणपति के चित्र के नीचे ऋद्धि–सिद्धि देवता के चित्र छपे है। राजधानी जकार्ता विजय स्मारक के रूप में भगवान कृष्ण सारथी के रूप में अर्जुन को उपदेश देते हुए चिन्हित है। विभिन्न धर्मो का निवास होते हुए भी सांस्कृतिक विरासत एक है। रामनवमी वहाँ राष्ट्रीय पर्व है।

यह विडम्बना ही है कि जिन हिन्दू राजाओं और शिवाजी जैसे मराठों को हिन्दू राष्ट्र का प्रतीक बनाकर मुस्लिम राष्ट्र के साथ टकराव की कल्पना की गई है वह ऐतिहासिक सच और निष्कर्षो के एकदम विपरीत है। सत्ता एंव राजनीतिक स्वार्थो के लिए हिन्दू शासक ने हिन्दुओं और मुस्लिम शासक ने मुसलमानों पर जुल्म ढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। बाबर ने इब्राहिम लोदी के साथ युद्ध कर दिल्ली पर कब्जा किया। हूमायूँ गद्दी पर बैठा तो उसको चुनौती देने वाला हिन्दू शासक नहीं, शेरशाह सूरी था। महाराणा प्रताप की सेना का नेतृत्व मानसिंह कर रहे थे। शिवाजी को हिन्दू राष्ट्र के निर्माण का प्रतीक बनाया जाता है। ऐतिहासिक तथ्य यह कि षिवाजी को पकड़ने वाला और उनके विरूद्ध शडयंत्र करने वाला आमेर राजा जयसिंह थे जिन्होंने सभी प्रकार से मुगल साम्राज्य की सहायता की। षिवाजी का निजी अंगरक्षक मुसलमान सिद्धि अब्राहम था। जब औरंगजेब ने षिवाजी को पकड़ा तब हिन्दू राज्य सामन्त जसवंत सिंह ने शिवाजी की हत्या कर देने के लिए औरंगजेब को उकसाया था।

आज तुर्की की मिशाल हमारे सामने है जब तुर्की को अरब विजेताओं ने दबाया और वहाँ की भाषा तुर्की में अरबी के अनन्त शब्द भर दिए और अरब लिपि जारी कर दी। जब तुर्की आजाद हुआ तो वहाँ का नेता मुस्तफा

कमाल पाशा ने अपनी संस्कृति का उद्धार किया। उन्होंने तुर्की भाषा से अरबी शब्द हटाये और पाशा ने अपना नाम बदलकर अपना नाम कमाल अता 'तुर्क' कर दिया क्योंकि पाषा शब्द अरबी भाषा का था।

हमारे संविधान में राष्ट्रीयता का स्वरूप धर्म निरपेक्ष, समानता और स्वतंत्रता पर आधारित है। किसी देश की राष्ट्रीयता का स्वरूप वहाँ की जनता की मानसिकता, परम्परा और आपसी सम्बन्धों पर निर्भर होता है। आज हालत यह है कि किसान, मजदूर, स्त्रियाँ, आदिवासी, अल्पसंख्यक आदि समुदाय विभिन्न प्रकार की हिंसा रूपों से घिरे है। हमारी अनेकता में एकता की संस्कृति, विचारों का लोकतंत्र असहमति का अधिकार, साहित्य, कलाएँ, पर्यावरण और संविधान हिंसक आचरण की चपेट में है। असलियत में यह समय एक साथ आभासी, कठिन और हिंसक है। वर्तमान में ऐसी सत्ता संरचना के समान है जो मायाजाल रचने में बड़ी दक्ष है। कभी वह भविष्य को स्वर्ण युग बनाने का वादा करती है तो कभी अतीत के स्वर्ण युग के खोल में पनाह लेती है जबकि असहाय वर्तमान लहूलुहान हमारे सामने खड़ा है।

राष्ट्रवाद–विमर्श

यदि हमें आज भारत छोड़ कर भागना पड़े तो हमारे शासनकाल में शर्मनाक वर्षो की कहानी कहने के लिए जो चीजें बची रहेगी उनसे यही पता चलेगा कि यहाँ का शासन किसी भी अर्थ में ओरांग–उटांग या चीते के शासनकाल से बेहतर नहीं था।––एडमंड बर्क

देश के विभाजन के उपरान्त भी टूट फूट के वे सभी बीज बच गए, जिन्हें स्वाधीनता आन्दोलन के दरम्यान नष्ट किया जाना था। वर्तमान में वे सभी भयानक परिणति के लिए आतुर है। देश का वातावरण देश की दिशा तयकर रहा है। जहाँ सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को लोकतंत्र के खतरे की बात करने के लिए जनता के सामने आना पड़ता है। जहाँ जन्तर–मन्तर पर संविधान की प्रतियाँ जलाई जाती है। जहाँ राष्ट्रवाद की परिभाषा संविधान से नहीं, मनुस्मृति से तय करने की कोशिश की जा रही है। जहाँ राष्ट्रपिता के कातिल का मंदिर बनाकर विकृत मानसिकता को तूल दिया जा रहा है। जहाँ शासक को राष्ट्र से ऊपर आसीन कर शासन की गलत नीतियों का विरोध राष्ट्र का विरोध माना जा रहा है। जहाँ जनसेवक चुनाव से पहले देश पर 50 साल आगे राज करने की बात कर रहे हैं। जहाँ सांवैधानिक संस्थाओं को बार–बार हमला कर कमजोर किया जा रहा है। जहाँ दरबारी मीडिया शासन का यशोगान करने में लगा है। जहाँ साम्प्रदायिकता की धीमी आँच पर राजनीति की रोटियाँ सेकी जा रही है। जहाँ बाबर की गलतियों की सजा जुम्मन मियां को दी जा रही है। जहाँ साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण कर निरर्थक बहसों को गरमाया जा रहा है। जहाँ मॉब लीचिंग कर निर्दोशों को मारा जा रहा है।
जहाँ शिक्षा संस्थानों को धर्म और विचारधारा के खाँचों में बांटकर बदनाम किया जा रहा है। जहाँ वन्दे मातरम और भारत माता की जय का उद्घोष राष्ट्रीयता का प्रमाण पत्र पाने की शर्त तय की जा रही है। शायद ऐसी मानसिकता वाले लोग भूल जाते हैं कि इमाम मस्जिद में देश के सकून, अमन और हिफाजत की पाँच बार दिन में दुआऐं मांग रहे है। स्वाधीनता संग्राम में दूसरों के योगदान को नकार कर कंगूरे राष्ट्रवाद का नारा बुलन्द कर रहे हैं। जहाँ सांवैधानिक संस्थाओं पर बार–बार हमला कर लोकतांत्रिक संस्थाओ को कमजोर किया जा रहा है। जहाँ बलात्कारियों को बचाने के लिए तिरंगा लेकर रैलियां निकाली जा रही है।

जहाँ धर्म और राष्ट्र दोनों में से एक को चुनकर देशभक्ति का सबूत पक्का किया जा रहा है। शायद वे नहीं जानते कि देशभक्ति किसी की जागीर नहीं है। अल्लाह की पनाह तलब करने वाला मुसलमान गद्दार नहीं हो सकता है। हजरत युसुफ मिश्री के घर में रहते थे। वहाँ उनकी बीवी युसुफ के रूप पर आसक्त होकर उनको फुसलाना चाहा। हजरत युसुफ ने जो जवाब दिया, वह हर मुसलमान के लिए आदर्श वाक्य और इबरत है, 'मैं अल्लाह की पनाह मांगता हूँ। वह (तुम्हारा पति) मेरा आका (मालिक) है। मुझे उसने बहुत अच्छी तरह से रखा है। मैं उनकी अमानत में खयानत नहीं कर सकता । बेशक! जालिम (गलत और बुरे काम करने वाले) का अल्लाह भला नहीं करता या कामयाबी नहीं देता।'[9]

'सबका साथ सबका विकास' का नारा बुलन्द करने वालों को जुबानी सत्यापन के स्थान पर जमीनी बदलाव करना होगा। राजस्थान के कायमखानी मुसलमान मोटेराव चौहान के पुत्र कायम खां के वंशज आज भी सेना में सेवा करने को बहुत ही प्रतिष्ठित कार्य समझते ही नहीं,करते हैं। ददरेवा का कायमखानी शहीद स्मारक देश के लिए कुर्बान होने वाले षहीदों की अमिट दास्तान बयान कर रहा है।

प्रेमचन्द के विचार

प्रेमचन्द का लेखन बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक लगभग चार दषकों (1900–1936) तक फैला हुआ है। यह वह समय था जब भारत का स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर था। जनता का अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का जोश उफान लिए हुआ था। प्रेमचन्द ने राष्ट्रवाद की जो अवधारणा प्रस्तुत की है वह राजनीतिक से ज्यादा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक है। उनके लिए राष्ट्र हिन्दू या मुस्लिम राष्ट्र नहीं, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। यह किसानों, मजदूरों, दलितों, मेहनतकश, अल्पसंख्यक और स्त्रियों का राष्ट्र है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'प्रेमचन्द का हृदय संकुचित राष्ट्रवाद से ऊपर था। वह जानते थे कि इंसाफ और नई जिन्दगी के लिए तमाम दुनियाँ की आम जनता जो लड़ाई लड़ रही है, हिन्दुस्तान का स्वाधीनता आन्दोलन उसी का हिस्सा है। वे हिन्दुस्तान के लोगों में एक नया भाव देख रहे थे कि दुनियाँ के तमाम मेहनत करने वाले लोग भाई–भाई है।'[10] प्रेमचन्द एक ऐसे भारत की कल्पना करते है जो पश्चिम से वास्तविक और बुनियादी रूप से भिन्न है। पश्चिम की तर्ज पर भारत के इतिहास में पुनर्जागरण ज्ञानोदय, राष्ट्रवाद, औद्योगिक क्रांति, व्यक्तिवाद की अपेक्षित अनुपस्थिति देख उनके मन में आह निकलती थी कि क्या कारण है कि जिसकी वजह से हमारे यहाँ अतीत के इतिहास में गर्व करने लायक अंग्रेजों को कुछ नजर नहीं आता है।

मार्क्स की तरह उन्हें भी लगता था कि शैतान को भी उसका जायज हक मिलना चाहिए। पश्चिमी सभ्यता हमारी सभ्यता से श्रेष्ठ है और मार्क्स जैसे विचारक ने भारत की अर्द्ध बर्बरता की स्थिति से सभ्यता की उँचाई पर पहुँचाने का सेहरा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के सिर पर बाँधा है। अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का सवाल प्रेमचन्द के सामने भी था। उन्होनें जो जवाब दिया वह विचारणीय है, 'देशों को जीत लेना और चीज है, ऊँची सभ्यता और चीज है। इटली ने निम्नतर की सभ्यता रखते हुए भी यूनान को जीत लिया जो उस समय जमाने में सभ्यता के उच्चतर शिखर पर पहुँच चुका था। सभ्यता और हिंस्र भावनाओं का बैर है। बर्बर कौमें सभ्य कौमों के मुकाबले ज्यादा लड़ाकू और जान पर खेलने वाली होती है. . . हिन्दुस्तानी सभ्यता की बुनियाद धर्म और नेकी पर थी जबकि पश्चिमी सभ्यता की बुनियाद लाभ और ईर्ष्या पर है।'[11] (विविध प्रसंग 3 पृ. 182)

प्रेमचन्द इस बात को स्वीकार करते है कि भारत में सांस्कृतिक एकता तो थी मगर राजनीतिक दृष्टि से एक राष्ट्र के रूप में संगठित नहीं था। वर्तमान राष्ट्रवाद यूरोप का ईजाद है और साम्राज्यवादी संघर्ष और लूट खसोट का आधार भी है। यूरोप ने जातीयता के नाम पर मनुष्य को भिन्न–भिन्न भागों में बांटकर एक दूसरे का शत्रु बना दिया। राष्ट्रवाद के इस विकृत रूप को प्रेमचन्द ने महसूस किया। बराबरी और भाईचारे को उसने पैरों तले इस प्रकार रोंदा है कि अब उसकी शक्ल भी नहीं पहचानी जा सकती है।

इन्सान की कीमत उसके नजदीक इतनी ही है कि वह रूपये कमाने का साधन है। वह कसाई की तरह उसके गोश्त और खाल का अंदाजा करके उसकी कीमत लगाता है।'[12] राष्ट्रीयता के उत्थान के लिए प्रेमचन्द जाति भेद के खात्मे को पहली शर्त मानने थे। 'राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण व्यवस्था, ऊँच–नीच का भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड़ खोदना है।'[13] प्रेमचन्द स्वदेशी को राष्ट्रीय चिन्तन में एक महत्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। स्वदेशी की भावना को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है, 'हिन्दुस्तान का उद्धार हिन्दुस्तान की जनता पर निर्भर है। जनता में अपनी योग्यता के अनुसार यह भाव पैदा करना प्रत्येक स्वदेशवासी का परमधर्म है। स्वदेश तुम्हें संदेश दे रहा है कि तुम भी मनुष्य हो, तमको भी ईश्वर के यहाँ से समान अधिकार प्राप्त है।'[14]

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में साहित्य, संस्कृति और भाषा का विषेश स्थान होता है। हमरी रूढ़ियाँ रहन–सहन, भाषा, आचार–विचार सब संस्कृति के अंग है। प्रेमचन्द इस बात से दुखी थे कि आज पश्चिम का अन्धानुकरण कर अपनी संस्कृति भूल रहे है। अंग्रेजी भाषा बोलने पर गर्व महसूस कर रहे हैं। प्रेमचन्द का मानना था कि हमारी भाषा और साहित्य ही राष्ट्रीयता को जन्म देते हैं। जब तक हमारी राष्ट्रभाषा का निर्माण नहीं होगा तब तक भारत राष्ट्र का निर्माण एक ख्वाब और ख्याल ही होगा। प्रेमचन्द ने कौमी जुबान के महत्व को पहचान लिया था कि राष्ट्र भाषा के बल पर ही अन्तर्राष्ट्रीय संघो के सामने खड़ा हो सकता है। आज हम हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा में शामिल कराने हेतु प्रयत्नशील है। प्रेमचन्द नें अपने समय में इस महत्व को भांप लिया था।

प्रेमचन्द हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करना चाहते थे। परन्तु उनकी सोच में साम्प्रदायिकता नहीं थी। वे मानते थे कि भाषा पर किसी धर्म का एकाधिकार नहीं है। प्रेमचन्द शुरू में उर्दू में लिखते थे, बाद में उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया और साहित्य लिखा। राष्ट्रवादी चिन्तन में धार्मिक सौहार्द का अपना महत्व होता है। प्रेमचन्द ने अपने सामयिक लेखकों में साम्प्रदायिकता पर सबसे सटीक और मजबूती के साथ लिखा है। उन्होंने साम्प्रदायिक राष्ट्रवाद की आलोचना करते हुए लिखा है 'राष्ट्रीयता वर्तमान युग का कोढ़ है उसी तरह जिस प्रकार मध्यकालीन युग में थी। नतीजा दोनों का एक है। साम्प्रदायिकता अपने घेरे के अन्दर पूर्ण शांति और सुख राज्य स्थापित करना चाहती है मगर उस घेरे के बाहर जो संसार था उसको नोचने खसोटनें में जरा भी मानसिक क्लेश नहीं होता। राष्ट्रीयता अपने परिमित क्षेत्र में रामराज्य का आयोजन करती है। उस क्षेत्र के बाहर का संसार उसका शत्रु है। सारा संसार ऐसे राष्ट्रों और गिरोहों में बंटा हुआ है। सभी एक दूसरे को हिंसात्मक संदेह की दृष्टि से देखते हैं और जब तक इसका अंत नहीं होगा, संसार में शांति का होना अंसभव है।'[15] (राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, जागरण लेख 27 नवम्बर 1993)

भारतीय सामयिक राष्ट्रवाद की इससे बेहतरीन व्याख्या नहीं हो सकती है। प्रेमचन्द ने आगामी समय की आहट को पहचान लिया था। भिन्नता के आधार पर एकता को कमजोर करने की कोशिश का प्रेमचन्द ने समर्थन नहीं किया। उन्होंने लिखा, 'राष्ट्रवाद चाहे कोई उपकार न कर सके, देश में खून खच्चर तो नहीं कराता, कुछ लोगों को एकत्र करता है जो राष्ट्र को सम्प्रदाय से ऊपर समझते है. . . यही बुनियाद है जिस पर राष्ट्र का भवन खड़ा होगा।'[16] (विविध प्रसंग– पृ. 421 अक्टूबर 1933)

प्रेमचन्द के अपने कल्पित राष्ट्रवाद में दलितों का वही स्थान है जो अन्य वर्णो और जातियों के लिए हैं जिस राष्ट्रवाद में जातिवाद और धार्मिक पाखण्ड हो वैसा राष्ट्रवाद प्रेमचन्द को स्वीकार नहीं था। राष्ट्रवाद के विकास में स्त्रियों की भागीदारी भी महत्वपूर्ण है। उनका मानना था कि स्त्रियों को बराबर दर्जा नहीं दिया जाता है तो राष्ट्र का समुचित विकास नहीं हो सकता है।

प्रेमचन्द बनते भारतीय राष्ट्र के महान साक्षी थे। प्रेमचन्द ऐसे राष्ट्र की कल्पना नहीं कर सकते थे जिसमें स्त्री, दलित, किसान और मजदूर के लिए पर्याप्त जगह न हो। उनका राष्ट्रवाद समावेशी था। ऐसे राष्ट्रवाद का स्वप्न देखते थे जिसमें वर्णव्यवस्था, धार्मिक भेदभाव और विषमता न हो। वे संकीर्ण राष्ट्रवाद के कट्टर विरोधी थे। डॉ. मैनेजर पांडेय ने ठीक ही लिखा हे कि राष्ट्रीयता की जैसी चेतना प्रेमचन्द में मिलती है वैसी उनके समकालीन हिन्दी लेखक में नहीं मिलती है।

निष्कर्ष

आज राष्ट्रवाद जब बड़ी तेजी से धार्मिक राष्ट्रवाद और सामुदायिक राष्ट्रवाद में संकुचित होकर जाति–बिरादरी और क्षेत्र बन गया है। राष्ट्रवाद पर भारत के संदर्भ में तब तक बात नहीं हो सकती जब तक जाति, धर्म और भाषा के विवादों को सामने न रखा जावे। इसमें जाति व्यवस्था से जुड़े विवादों का चरित्र जटिल रहा है। जाति व्यवस्था सामाजिक संरचनाओं के बीच गतिमान रहती है इसलिए निपटना मुश्किल काम है। कट्टर राष्ट्रीयता से निपटने के लिए या राष्ट्रीयता की रक्षा हेतु न्यायपालिका को अपनी भूमिका को सक्रिय और कानून का कठोरता से पालन करवाना सुनिश्चित करना होगा।

1. सांवैधानिक संस्थाओं की रक्षा करना सर्वाच्च न्यायालय की जिम्मेदारी है।
2. देश में साम्प्रदायिकता फैलाने वालों पर नकेल कसनी होगी।
3. नागरिकों के अधिकारों की रक्षा तथा न्याय की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करनी होगी।
4. धार्मिक वैमनस्य फैलाने वाले संगठनों को प्रतिबन्धित करना होगा।
5. राजनीतिक दलों पर कड़ी नजर रखकर प्रशासन की जवाबदेही सुनिश्चित करवाना होगा।
6. व्यवस्था पारदर्शी और न्यायोचित करनी होगी।

संस्कृति धर्म का कवच है। सभी धर्मो का समान रूप से आदर करने का भाव हमारा राष्ट्रवादी मार्ग है जो सामाजिक न्याय का मार्ग है। सर्वधर्म समभाव का मार्ग इन्सानियत का मार्ग है। इसे ही देश के समर्थन में राष्ट्रवाद की कसौटी माना जा सकता है। राष्ट्रवाद की पहली शर्त है समाज में साम्य भाव का दृढ़ होना। इसके बिना राष्ट्रीयता की कल्पना नहीं की जा सकती है। जब तक धर्मो और जातियों के जुड़ाव की संवेदनशीलता नहीं होगी तब तक राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है।

प्रेमचन्द ने भारतीय आत्मा, अस्मिता और भारतीय विवेक को समग्र रूप में भारतीयता का अनुभव कराया है। पराधीन काल में उठने , उससे स्वराज प्राप्ति, संस्कृति, स्वत्व, स्वभाषा को राष्ट्रीय चेतना के विस्तार में भारतीयता ने पूरे देश को गतिशील और संकल्पवान बनाया है। प्रेमचन्द ने स्वतंत्रता, समता और बंधुता पर आधारित जनतांत्रिक राष्ट्रवाद की हिमायत की थी।

आज धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक राष्ट्रवाद की अवधारणा की जरुरत है जिसके प्रेमचन्द हिमायती थे। ऐसे राष्ट्रवाद में ही भगतसिंह की तरह के भाव पैदा हो सकते है जो फांसी के फँदे पर हँसते हँसते झूल जाते है, रामप्रसाद 'बिस्मिल' की तरह फाँसी पर चढ़ने से पहले अगले जन्म में भी देश के लिए मिटाने से चाहत रखते है। जो अपने जीवन में स्वर्ग के समान मातृभूमि के प्रति गौरव रखते है और मर जाने पर दफन के लिए बहादुरशाह जफर की सी इच्छा रखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिन्दी साहित्य कोष भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, 2005, पृ. 554*
2. *वही, पृ. 554*
3. *रवीन्द्रनाथ टैगोर, राष्ट्रवाद (अनु. सौमित्र मोहन) नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, पृ. 28*
4. *आलोचना अंक–26 (स. नामवर सिंह) पृ. 29–30*
5. *आलोचना अंक–26 (स. नामवर सिंह) पृ. 32*
6. *निर्मल वर्मा, साहित्य का आत्म सत्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 पृ. 27–28*
7. *के. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली,2001*
8. *एम. एन. रॉय, हमारा सांस्कृतिक दर्प, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1998 (पृ. 58–59)*
9. *पवित्र कुरान, सूरह युसुफ–23*
10. *डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2001 पृ. 47*
11. *तद्‌भव (स. अखिलेश) अंक–19, पृ. 55*
12. *अमृतराय, विविध प्रसंग– 2, हंस प्रकाशन,इलाहाबाद 1962, पृ. 264*
13. *अमृतराय, विविध प्रसंग– 2, हंस प्रकाशन,इलाहाबाद 1962, पृ. 476*
14. *अमृतराय, विविध प्रसंग– 2, हंस प्रकाशन,इलाहाबाद 1962, पृ. 471*
15. *कथाक्रम (स. शैलेन्द्र सागर) अंक–54, पृ. 78*
16. *तद्‌भव, स.(अखिलेश) अंक–19, पृ. 64*